# गोविभा

गोविज्ञान भारती का
संदेशवाहक मासिक

वर्ष : 10 ● अंक : 7 | सम्पादक : नरेन्द्र दुबे, डॉ. पुष्पेन्द्र दुबे

20 अक्टूबर, 2012


# जीवन की अखंडता को श्रद्धा से मानो

- विनोबा

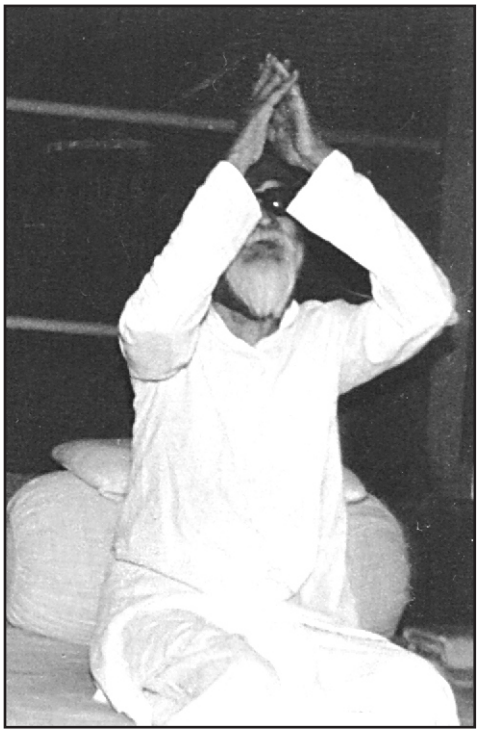

सवाल पूछा जाता है कि मृत्यु के बाद इस जन्म में अर्जित ज्ञान साथ जाता है ? निष्चय ही ज्ञान के बीज साथ जाते हैं।बहुत-सा ज्ञान तो हम इसी जन्म में भूल जाते हैं, पर उसका प्रभाव विद्यमान रहता है।जैसे, हमने भाषा सीखी उसे हम भूल जाते हैं,परंतु भाषा सीखने की क्षमता बढ़ जातीहै, जिससे शीघ्रता से फिर उसे सीख सकते हैं। शंकराचार्य का अल्प अवस्था में ही इतना ज्ञानी होना यही सिद्ध करता है।

विज्ञान मूलतः इंद्रियगम्य है। इसलिए उसकी एक सुनिश्चित मर्यादा होती है। विज्ञान इंद्रियों के सहारे आगे बढ़तहै।चाहे जितनी बढ़ियादूरबीनोंन हो, आखिर देखना होगा हमें अपनी आंख से ही। कोई भी सिद्धांत इंद्रियों के जरिये सही सिद्ध हुए बगैर विज्ञान उसे नहीं मानता। लेकिन इंद्रियों की अपेक्षा मन अधिक शक्तिशाली होता है।और मन से भी शक्तिशाली आत्मा है।क्योंकि उस मन के सारे व्यापार 'मैं' आत्मा जान सकता हूं इसलिए विज्ञान की मर्यादा इंद्रियों तक है।परंतु हम जानते हैं कि सृष्टि में लघुता और विशालता, दोनो अनंत हैं।यदि हम पुनर्जन्म को नहीं मानेंगे, तो जीवन में कोई स्वाद नहीं रहेगा। मान लो, इस समय एक सांप मुझे काटता है और मैं मर जाता हूं,तो क्या इसका मतलब यह हुआकि मैं नेआज तक जो सारा ज्ञान प्राप्त किया, वह बेकार गया? सांप जैसे बुद्धि शून्य और क्षुद्र प्राणी के काटने से मेरा सारा ज्ञान एक क्षण में नष्ट हो सकता हो तो फिर मेरी ज्ञान-लालसा ही खत्म हो जायेगी। लेकिन मुझे और ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होती है, क्योंकि मैं पुनर्जन्म में विश्वास करता हूं मुझे बीड़ी पीने की इच्छा कभी हुई ही नहीं, इसका कारण यह हो सकता है कि मैं नेअपने पूर्वजन्मों में कुछ ऐसे अनुभव लिये हों और उनकी व्यर्थता मुझे महसूस हुई हो। इसका मतलब यह है कि हर कोई अपने पुराने जन्मों के अनुभवों की पूंजी लेकर नया जन्म लेता है। जब तक विज्ञान उसे साबित नहीं करता तब तक उसे मानेंगे नहीं, तो ठीक नहीं होगा। जीवन की अखंडता को श्रद्धा से मानना चाहिए।

सम्पादकीय

# देश के ग्रामीणों एक हो जाओ...!

देश में खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश को मंजूरी दे दी गयी है। यह सन् 1992 में किए गए समझौतों का अगला चरण है। जब भारत ने वैश्वीकरण को अपनाया था, तभी यह स्पष्ट था कि हमें उदारीकरण में कहां तक जाना है। आज खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश को लेकर भारत के करोड़ोंव्यवसायियों में भय व्याप्त है। यह भय गैरवाजिब नहीं है। अनेक अध्ययनोंसे यह साबित हुआ है कि एक मॉल खुलने से लगभग तीन हजार दुकानेंबंद हो जाती हैं या उनके व्यापार पर उसका गंभीर असर होता है। बहुराष्ट्रीयकंपनियां उपनिवेशवादी दृष्टि लेकर देश में प्रवेश कर रही हैं। उन्हेंयहां बहुत बड़ाबाजार नजर आ रहा है। जहां से वे ढेर सारा मुनाफा कमाने के मंसूबे बांधे बैठी हैं। भारत सरकार की नीतियां उन्हें हर संभव सहायता उपलब्धकरवा रही हैं। देश की राज्य सरकारें भले ही खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश का विरोध कर रही हैं, लेकिन वे भी अपने राज्य में उद्योग लगाने के लिए बड़ीकंपनियों के आगे साष्टांग दण्डवत कर रही हैं। उन्हें खेती की अच्छी जमीन औने-पौने दामों पर उपलब्धकरवाने के लिए ऐड़ी-चोटीका जोर लगा रही हैं। यहां भारत सरकार और यहां राज्य सरकारें, दोनों ही अपने-अपने स्तर पर विदेशी निवेश को लुभाने के लिए कटोरा लिये जनता के पैसे से दुनियाका भ्रमण कर रही हैं। पहले अनाज की कमी का रोना रोकर हमने दुनियाके सामने हाथ फेलाये और अब तथाकथित विकास का झुनझुना पकड़कराज्य के मंत्री से लेकर प्रधानमंत्री तक पूंजीपतियों की चरणवंदना कर रहे हैं। अब तो ऐसा लगने लगा कि ऊपर से बस चेहरे अलग-अलग हैं, भीतर से सबके हाथ आपस में मिले हुए हैं।

आज यदि व्यापारी खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश से घबरा रहे हैं तो उन्हेंयह बात याद रखना चाहिए कि वे तब नहीं घबराए थे जब इस देश के हस्तोद्योग को नष्ट करने के लिए उन्होंनेकोई कसर उठा नहीं रखी। दो नंबर का माल बेचने, टैक्स चोरी, अधिक मुनाफा कमाने, मिलावटी खाद्य वस्तुएंबेचने, आवश्यक वस्तुओं की कालाबाजारी करने के विरोध में उन्होंने कभी बंद का आह्वान नहीं किया। किसी व्यापारी एसोसिएशन ने सभी प्रकार के करों की चोरी करने वाले व्यापारी का बहिष्कार नहीं किया। व्यापारियों ने ही समाज में यह तथ्य स्थापित किया कि ईमानदारी से व्यापार नहीं किया जा सकता। वह सदा से सरकार को ही भ्रष्ट बताता रहा और खुद को पाक-साफ। आजादी के पहले अंग्रेज इस देश के गांवों का शोषण करते रहे और आजादी के बाद व्यापारी और सरकार दोनों मिलकर ग्रामीणों को ठगते रहे। आखिर ऐसा कब तक चलेगा ? तभी तक, जब तक ग्रामीणों में आजादी की ललक हिलोरें नहीं मारने लगतीं। विज्ञान के जमाने में इस देश के ग्रामीणों को अधिक दिनों तक गुलाम बनाए रखना संभव नहीं होगा। अभी ग्रामीण अपनी कठिनाइयों के निदान के लिए दिल्ली अथवा राज्यों की राजाधानियों की ओर देखते हैं। जिस दिन उन्हेंयह भान हो जाएगा कि हमें अपनी कठिनाइयां स्वयं ही सुलझानी है उस दिन से वे आजाद हो जाएंगे। शहरी बुद्धिजीवियों के भुलावे में वे अधिक दिनों तक नहीं रहेंगे। ग्रामीणों को करना क्या है ? जितनी आबादी है, उसके मान से अन्न, वस्त्र, आवास, शिक्षा, रोजगार के साधन, मनोरंजन आदि की योजना करना है। ग्रामीण चाहे कि न चाहे यदि उसे अपनी जमीन की रक्षा करना है तो मालकियत विसर्जन करना ही होगा, क्योंकि विज्ञान के जमाने की यही मांग है। ग्राम में परिवार भावना का विस्तार होते ही वह गुलामी से मुक्त हो जाएगा। अभी तो वह पैसे के मोह में पड़ाहै। वही उसकी गुलामी का कारण भी है।

आने वाले समय में शहरी और ग्रामीणजन के बीच एक नये संघर्ष की शुरुआत हो तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। परिस्थितियां वैसी ही बनती जा रही हैं। इसमें शहरवासियों की जवाबदारी ज्यादा बनती है। हमने किसान और कृषि सभ्यता की जितनी उपेक्षा की है, उतनी और किसी देश ने नहीं की। इसके बाद भी वह बेजुबान है। उसकी आवाज नहीं सुनी जा रही है। यदि शहरों को टूटने से बचाना है तो गांव को उजड़नेसे रोकना होगा। हरेक गांव के लिए उसकी स्थिति के अनुसार योजना बनाने से ही यह संभव है। आज यदि कार्ल मार्क्स के नारे को कुछ इस तरह से लिखा जाए तो क्या होगा ? देश के ग्रामीणों एक हो जाओ। तुम्हारे पास खोने के लिए सिर्फ गुलामी है, जीतने के लिए सारे शहर पड़ेहैं।

- डॉ.पुष्पेंद्र दुबे

इस अंक में ...


- इस्लाम में बकरीद पर गोकुशी जरूरी नहीं
- शहर और गाँव के बीच संघर्ष
- ग्रामसेवा
- हवा में बुना हुआ अखबार
- मांस निर्यात से सब्सिडीहटाएं
- प्रेरक कहानियाँ
- गाँधीजी के गुजरात में चमक खोती खादी
- एफडीआई से खादी बिक्री बढ़ेगी

# इस्लाम में बकरीद पर गोकुशी जरूरी नहीं

- नरेंद्र दुबे

भारत में गोरक्षा जैसे महत्वपूर्ण आर्थिक प्रश्न को भी सांप्रदायिक और राजनैतिक रंग दिया जा रहा है। यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है। वास्तव में जैसे पश्चिम के देशों में आधुनिक विज्ञान और यंत्र-शास्त्र, टेक्नालॉजी आदि का विकास हुआ वैसे ही भारत में बहुत प्राचीनकाल में गोविज्ञान का विकास हुआ था। भारत से यह गोविज्ञान सारी दुनिया में गया। पश्चिम में गौ को काउ, बैल को बुल और पूर्व में जापान में गौ को 'ग्यू' कहा जाता है। ये शब्द संस्कृत के ही अपभ्रंश हैं।

भारत की और पश्चिम की सांस्कृतिक परंपरा में यही बुनियादी भेद है कि भारत में संपूर्ण गोवंश का पूरा-पूरा उपयोग किया गया। दूध, खेती, खाद, परिवहन, ग्रामोद्योगों के लिए चालक शक्ति के उपयोग और चर्मोद्योग आदि का जैसा विकास भारत में हुआ वैसा पश्चिम में नहीं हो सका। पश्चिम में गाय दूध के लिए तथा बैल मांस के लिए और घोड़ा खेती के लिए पाले गए।

भारत में जैसा गोवंश रक्षणीय माना गया और उसे परिवार का अंग माना गया वैसा पश्चिमी देशों में नहीं हुआ।

भारत में लगभग दस हजार सालों से गोसेवा गोरक्षा की परंपरा है जबकि ऐसी परंपरा पश्चिम के किसी देश में नहीं है। इसलिए भारत में गाय-बैल के प्रति जैसा पूज्य भाव है, वैसा वहां नहीं है।

भारत में दूध और सांसाहार के लिए बकरी-बकरे का पालन होता है वैसा ही वहां दूध और मांस के लिए गाय-बैल पाले जाते हैं। ऐसे उपयोगितावादी दृष्टिकोण के कारण जब तक गाय दूध देती है तब तक तो उसका बहुत अच्छा पालन होता है और जब वह दूध देना कम कर देती है या बंद कर देती है तो उसका कतल कर दिया जाता है।

पश्चिमी देशों में खेती, परिवहन और ग्रामोद्योगों में घोड़े का प्रयोग होता था। इसलिए वहां हार्स पॉवर शब्द चला। वहां अश्व संस्कृति का अच्छा विकास हुआ इसलिए वहां घोड़ा कतल परंपरा से प्रतिबंधित रहा। इतना ही नहीं यहूदी धर्मग्रंथ में घोड़े के कतल को प्रतिबंधित किया गया है। इस परंपरा के ही परिणामस्वरूप आज भी संपूर्ण इस्लामिक जगत में घोड़े का कतल नहीं किया जाता है।

## बलि या कुर्बानी प्रथा

प्राचीन काल में मांसाहार प्रचलित था। वह स्वाभाविक आहार था। शिकार की बजाय पशुपालन करके मांसाहार प्राप्त करना सरल था। ऐसा आहार भी परमेश्वर की कृपा से ही मिलता है इसलिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना चाहिए यह विचार दृढ़ हुआ और मंत्र पढ़कर कतल करने की प्रथा प्रचलित हुई। भारत में यद्यपि गोमांस वर्जित था, गाय-बैल अवध्य थे किंतु अनेक अवसरों पर बकरे और भैंसे की बलि देने की प्रथा प्रचलित थी। लेकिन जैसे-जैसे शाकाहार का प्रचलन बढ़ा वैसे-वैसे मांसाहार निवृत्ति के प्रयास होने लगे। भारत में मांसाहार को नियंत्रित और मर्यादित करने के लिए उसे यज्ञों से जोड़ा गया और केवल यज्ञ-प्रसाद के रूप में ही मांसाहार करने की इजाजत थी। इस प्रकार साल में एकाध बार ही लोग मांस सेवन कर सकते थे और वह भी यज्ञ प्रसाद रूप में अत्यंत कम मात्रा में। किंतु भगवान महावीर, गौतम बुद्ध और वैष्णव संतों ने ऐसी यज्ञ हिंसा और बलि प्रथा का भी निषेध किया और उनके सद्प्रयासों से यह कुप्रथा भी समाप्त हुई यद्यपि अपवाद रूप में पूर्वी भारत के कुछ देवी मंदिरों में यह आज भी प्रचलित है।

अरब देशों में कुर्बानी की प्रथा हजरत मोहम्मद साहब के भी बहुत पहले से प्रचलित थी। पवित्र कुरान ने कुर्बानी के लिए केवल छः पालतु पशु निर्धारित किए उनमें से किसी भी एक की कुर्बानी दी जा सकती है। इसकी पृष्ठभूमि में हजरत इब्राहिम द्वारा अल्लाह के संकेत पर अपने प्रिय पुत्र हजरत इस्माइल की कुर्बानी की धर्मकथा प्रचलित है। ऐसी ही धर्मकथा भारत में भी राजा मोरध्वज की प्रचलित है। अंतर केवल इतना ही है कि इस्लामी जगत में हजरत इब्राहिम के त्याग और अल्लाह के प्रति समर्पण की स्मृति में प्रचलित कुर्बानी की प्रथा आज भी प्रचलित है और प्रतिवर्ष इदुज्जुहा पर कुर्बानी देकर लोग यह पर्व मनाते हैं।

पवित्र कुरान में जिन छ: पालु पशुओं की कुर्बानी कही इजाजत है उनमें बकरा, बकरी, उंट, उंटनी, भेड़-भेड़ा दुंबा-दुंबी, भैंस-भैंसा तथा गाय-बैल हैं।

अरब देश में गाय-बैल केवल दूध और मांस के लिए ही पाले जाते थे जैसा कि भारत में बकरी दूध के लिए और बकरा मांस के लिए आज भी पाले जाते हैं। वहां के बैल में और भारत के बकरे में मांसाहार की दृष्टि से अंतर नहीं है।

दुनिया के सभी देशों में पहले वस्तु-विनिमय की ही प्रथा थी और एक गाय के बदले में सात भेड़ें मिलती थीं। इसलिए कुर्बानी के लिए सात भेड़ के बदले एक गाय मान्य की गई। इसका यह आशय कदापि नहीं है जैसा कि कुछ अंधविश्वासी मानते हैं कि एक गाय की कुर्बानी से सात भेड़ों की कुर्बानी के बराबर पुण्य मिलेगा।

अरबी भाषा में गाय को 'बकर' कहते हैं। इसे आधार बनाकर यह भी प्रचारित किया गया है कि बकरीद पर गाय की कुर्बानी देनी चाहिए। किंतु ऐसा है नहीं। क्योंकि यदि अरबी भाषा में ऐसा कहना होता तो इसे इदे-बकर' कहते न कि बकरीद।

यद्यपि कुरान-शरीफ में इदुज्जुहा पर कुर्बानी को सम्मति दी गई है लेकिन इसे धार्मिक फर्ज नहीं माना है। इस्लाम में कलमा, जकात, रोजा और हज धार्मिक फर्ज हैं कुर्बानी धार्मिक फर्ज नहीं है और ना ही मांसाहार धार्मिक फर्ज है। कोई भी मुसलमान कुर्बानी न देकर और मांसाहार न करके भी मुसलमान रह सकता है।

## भारत में इस्लाम

भारत में आधुनिक इस्लाम का प्रवेश हजार-बारह सौ वर्ष पहले ही हुआ है। प्रारंभ में सांस्कृतिक टकराव हुआ लेकिन जल्दी ही वह बात ध्यान में आ गई कि भारत का सारा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, ग्रामीण जीवन खेती, ग्रामोद्योग, परिवहन, आहार आदि गाय-बैल पर आधारित है। इसलिए यहां गोमांस और गाय, बैल की कुर्बानी नहीं चलेगी। इस प्रकार भारत में इदुज्जुहा पर बकरे की कुर्बानी प्रचलित हुई और इदुज्जुहा को बकरीद माना गया। भारत में पहले से ही अनेक पंथों में बकरे की बलि देने की प्रथा थी इसलए यहां इसे स्वीकार करने में भी कठिनाई नहीं हुई।

## मुस्लिम शासकों की देन

भारत में इस्लाम के प्रवेश से बहुत पहले से परंपरा से ही गोहत्या बंद थी। लेकिन मुस्लिम शासकों को लगा कि मुस्लिम नागरिक कुरान में इजाजत होने से गाय-बैल की कुर्बानी भी दे सकते हैं और मांस के चमड़े के लिए इनका कतल भी कर सकते हैं। इसलिए मुस्लिम शासकों ने गोहत्याबंदी कानून बनाये। इसका बहुत अच्छा विवरण डा.सैयद मसूद ने अपनी पुस्तक 'काउ प्रोटेक्शन इन इण्डिया अंडर मुस्लिम रूल' में किया है। बादशाह अकबर से लेकर बहादुर शाह जफर तक संपूर्ण मुगलिया सल्तनतों में गोहत्या प्रतिबंधित रही।

जम्मू-कश्मीर में जेनुअल आबदीन ने गोहत्याबंदी का जो कानून बनाया वह कुछ संशोधनों के साथ वहां आज तक प्रचलित है। शेख अब्दुल्ला ने भी उसे कायम रखा और डॉ.फारुख अब्दुल्ला ने तो राज्य के बाहर से गोमांस मंगाकर बेचना भी प्रतिबंधित किया है।

## कुरान शरीफ में गाय

कुरान शरीफ में जगह-जगह दूध की महिमा का वर्णन है। खासकर पारा - 14 रुकअ -7 की दूसरी आयत में गाय की नियामतों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की गई है।

हजरत मोहम्मद साहब का जीवन सभी के लिए आदर्श अनुकरणीय जीवन है। उन्होंने कुरान शरीफ की हिदायतों के अनुसार जीवन जीकर दिखाया है। इसलिए उनके वचनों का विशेष महत्व है। उनके वचन जो हदीस में प्रकट हैं वे स्पष्टत: गोरक्षा को पुष्ट करने वाले हैं। उनका एक वचन है, ''अकरमल बकर काइलहा सैयुयुदल बहाइम'' अर्थात गाय की इज्जत करो क्योंकि वह चौपायों की सरदार है।'' हजरत इमाम आजम अबु अनीफा ने अपनी पुस्तक में हदीस क्रमांक 494.4 में लिखा है ''अल्लाह ने नहीं उतारी कोई बीमारी जिसकी उसने दवा नहीं उतारी सिवाय बुढ़ापा और मौत के। तुम गाय का दूध पीने के पाबंद हो जाओ, चूंकि गाय अपने दूध के अंदर सभी तरह के पौधों के सत्व को रखती है।'' इसी पुस्तक में दूसरी एक हदीस है, ''इब्ने सनी और हाकिम अबू नईम रखायत लाए हैं कि नबी अलैहिसलेल्लाहि वस्सलम, मोहम्मद साहब ने फरमाया है कि ''लाजिम कर लो गाय का दूध पीना क्योंकि वह दवा है, गाय का घी शिफा है और बचो गाय के गोश्त से चूंकि वह बीमारी पैदा करता है।''

कुरान शरीफ में मनुष्यों के लिए खाने की चीजों के बारे में लिखा है :

मनुष्य अपने अन्नकी ओर देखे
कि हमने उपर से खूब पानी बरसाया,
फिर हमने विशेष प्रकार से जमीन चीरी,
उसमें अनाज उगाया
और अंगूर और सब्जियां
और जैतून और खजूरें
और घने बाग
और फल तथा चारा उगाया

तुम्हारे और पशुओं के लाभ के लिए - कुरान शरीफ 80.24.32

## गोहत्या का कारण ब्रिटिश राज

भारत में अंग्रेजों ने अपनी फौज के लिए गोमांस की आपूर्ति के लिए मुस्लिम कसाइयों को कतल के धंधे में लगाया। चमड़ेका निर्यात शुरू किया। इस प्रकार मांस और चमड़ेका व्यापार और कतल का धंधा अंग्रेजी राज की देन है। उन्होंने इसका उपयोग हिन्दू -मुस्लिम द्वेष बढ़ाने में भी किया। अंग्रेजों की इस चाल को नाकाम करने का प्रयास खिलाफत आंदोलन के समय मौलाना मोहम्मद अली और मौलाना शौकत अली ने गोहत्याबंदी के समर्थन में मस्जिदों में जा-जाकर अपनी तकरीरों में किया।

## भारतीय संविधान में गोहत्याबंदी

आजादी के बाद भारत की संविधान सभा में मौलाना अबुलकलाम आजाद, डॉ.जाकिर हुसैन, शेख अब्दुल्ला सहित अनेक मुस्लिम विद्वान थे। उन्होंने सर्वसम्मति से संविधान की धारा 48 में गोहत्याबंदी को राज्यों का नीति निर्देशक सिद्धांत बनाया। इसके आधार पर जिस किसी राज्य में भी गोहत्याबंदी कानून बने वहां मुस्लिम विधायकों ने उसका समर्थन किया और ऐसे कानून सर्वसम्मति से ही बने।

## गोहत्या के जिम्मेदार पूंजीपति उद्योगपति

भारत में चल रही गोहत्या की जिम्मेदारी पूंजीपतियों, व्यापारियों, उद्योगपतियों और निर्यातकों की है। इसके लिए न कि मुस्लिम जिम्मेदार हैं और न गरीब कसाई। मुस्लिम कसाई बहुत गरीब बेजुबान मजदूरहैं जो मांस-चमड़ेके व्यापारियों और निर्यातकों के लिए मजदूरी के लिए कतल करते हैं।ऐसे पूंजीपतियों में सभी धर्मो और जातियों के लोग हैं।गोहत्याबंद होने से मजदूर कसाइयों को कोई नुकसान होने वाला नहीं है और न उनका धंधा ही खतम होने वाला है। क्योंकि वे बकरा, बकरी, पाड़ा,भैंसा, भेड़ आदि के कतल से अपनी आजीविका चला ही सकते हैं।कानून से गोहत्या बंद होने से गोमांस और कतली चमड़ाव्यापारियों और उद्योगपतियों को वह नहीं मिलेगा। गाय-बैल की स्वाभाविक मृत्यु के पश्चात् मृत चर्म उन्हें मिलेगा लेकिन वह भी उन्हें गांव से खरीदना पड़ेगाक्योंकि तब कतलखानों में गाय-बैल कतल नहीं हो सकेंगे। आज तो शहरों के बड़े-बड़ेकतलखानों से उन्हें अपने उद्योगों के लिए चमड़ाआदि मिल जाता है।

इसीलिए ये सारे निहित स्वार्थी संगठित होकर कसाइयों के नाम पर सारी उठापटक करते हैं ,अफवाहें फेलाते हैं ,दंगा-फिसाद कराते हैं और धार्मिक अंधविश्वास भी फेलाते हैं।ये ही लोग राजनैतिक नेताओं और संचार माध्यमों को पैसा देकर प्रभावित कर ऐसा वातावरण बनाते हैं कि गोहत्याबंदी से मुसलमानों का हित और धर्म प्रभावित होगा और इससे इस्लाम ही खतरे में पड़जाएगा। ऐसे ही प्रचार का यह परिणाम हुआकि पश्चिम बंगाल सरकार ने कुछ वर्षों पूर्व इदुज्जुहा पर वहां आधा-अधूरा गोहत्याबंदी कानून भी लागू न करने का आदेश जारी किया, जिसे सर्वोच्च न्यायालयने यह कहकर खारिज कर दिया कि, ''इस्लाम में गाय-बैल की कुर्बानी देना धार्मिक अनिवार्यता नहीं है।''

हम आशा कर सकते हैं कि भारत में मुसलमान समन्वित भारतीय संस्कृति, संविधान के निर्देश और इस्लाम की भावना के अनुरूप इदुज्जुहा जैसे पवित्र त्यौहार पर गाय-बैल की कुर्बानी से बचेंगे। उनके ऐसा करने से भारत में अन्य धर्मवालों में इस्लाम के प्रति प्रेम और आदर बढ़ेगाजिससे अंततः सभी को लाभ होगा।

## खादी मिशन की बैठक 27 अक्टू. को जयपुर में

**जयपुर।** खादी रक्षा अभियान संचालन समिति एवं केंद्रीय खादी रक्षा अभियान की बैठक 27 अक्टूबर को प्रातः 11 बजे राजस्थान खादी ग्रामोद्योग संघ बजाज नगर जयपुर में होगी। इस सभा में अब तक की समीक्षा के साथ आगे के कार्यक्रम तय किए जाएंगे। संयोजक बालभाई ने बताया कि 2 और 3 नवंबर को पानीपत में होने वाली बैठक को स्थगित किया गया है।पहुंचने की सूचना श्री लक्ष्मीचंदभण्डारी, प्रदेश संयोजक, खादी मिशन जयपुर को भेजें।

# शहर और गांव के बीच संघर्ष

आधुनिक उद्योगों के उदय-काल से ही शहर और गांव के तथा उद्योग और खेती के विभिन्न हितों का प्रश्न हमेशा चर्चा का विषय रहा है। समय समय पर सामाजिक और राजनीतिक संग्रामों के दौरान दोनों विभागों में मेल हुआ है, परंतु यह मेल अस्थायी सिद्ध हुआ है। ज्यों ही सामान्य उद्देश्य पूरा हुआ त्यों ही शहर और गांव के बीच पुराना विरोध पहले से अधिक तीव्र रूप में प्रकट हुआ है।

कच्चे माल, सस्ती मजदूरी और बाजारों के शोषण के लिए एक देश पर दूसरे देश के आर्थिक और राजनीतिक नियंत्रण की बुराई को उसका उचित नाम उपनिवेशवाद दे दिया गया है और आजकल उपनिवेशवाद के समर्थक बहुत कम मिलते हैं। लेकिन जो देश नवयुग में तेजी से प्रवेश करने की आकांक्षा रखते हैं, वे आज भी अपनी ही ग्रामीण प्रजा के प्रति उपनिवेशवाद की नीति का सार रूप में अमल करते हैं। इसके लिए उद्योग जितनी मात्रा में और जिस कीमत पर चाहते हैं, गांवों पर अपना तैयार माल थोपते हैं और उन्हें उद्योगपतियां की मनचाही कीमत और मात्रा में कच्चा माल पैदा करने को मजबूर करते हैं। लेकिन कोई इस पर किसी तरह का विचार ही नहीं करता। इसके विपरीत, इसे ''प्रगति'', ''राष्ट्रीय सम्पन्नता'' वगैरा नाम देकर उचित बताया जाता है और उसका गौरव भी बढ़ाया जाता है। गीना लॉम्ब्रासो कहते हैं, ''बड़े उद्योगों से सम्बन्धित पशुबल उन तमाम देशों और वर्गों को, जो उद्योग-प्रधान नहीं हैं और इसलिए कमजोर हैं, विजित देश और विजित वर्ग समझता है।''

उद्योगों के क्षेत्र में उत्पादन के बढ़ने का अर्थ सामान्यत: लागत खर्च का घटना होता है। परंतु खेती की रचना ऐसी है कि उसमें धरती के उत्पादन को बढ़ाना होता है। किसानों को कई तरह की सूक्ष्म युक्तियों और दबाव द्वारा मजबूर किया जाता है कि वह औद्योगिक फसलें उत्पन्न करे। इससे जो चीजें उसे खुद अपने स्वास्थ जीवन-निर्वाह के लिए चाहिए वे उसे नहीं मिलतीं। इसके फलस्वरूप कसहीन जमीन से होने वाली आय की कमी पूरी करने के लिए ''खेती के लिए आर्थिक सहायता, रिश्वत और भावों के नियंत्रण'' का आश्रय लेना पड़ता है और ग्रामीण प्रजा को संतुष्ट रखने के लिए कारखानों में बना सस्ता माल, मौज-शौक की सामग्री, सिनेमा, रेडियो, मोटरों आदि का उन पर ''नशा'' चढ़ाया जाता है। इसके अलावा सड़कों और रेलों का जाल गांवों में बिछाया जाता है, जिनके बिना उनका काम बहुत कुछ चल सकता है। परंतु ये दोनों इसीलिए फेलायी जाती हैं कि इनसे उद्योगों की उद्देश्य पूर्ति होती है। ग्रामीणों को ये सब चीजें मंत्रमुग्ध कर लेती हैं और वे यह समझने लगते हैं कि ये ही प्रगति के लक्षण हैं और इस प्रकार वे स्वेच्छा से अपने ही शोषण के साधन बन जाते हैं।

किसी समय यह आशा रखी गयी थी कि योजना-बद्ध अर्थ-व्यवस्था में आर्थिक और सामाजिक नियंत्रण रखने से गांव और शहर का संघर्ष मिट जाएगा - कम से कम सिद्धांत में तो वह मिटाया ही जा सका है - और ''खेत, कारखाने तथा उद्योग-घर'' का समन्वय किया जा सकेगा। परंतु व्यवहार में, डॉ. मिट्रानी के शब्दों में, नियंत्रण बराबर ग्रामीण जनता को हानि पहुंचाकर ''निरंतर बना रहा है।'' नतीजा यह है कि समाज को दोनों वर्गो के बीच की चौड़ी खाई अभी तक नहीं पट पाई है। ''एक को अब भी रोष होता है, यदि दूसरे की तरफ से माल की पूर्ति कम हो जाती है या अपनी कोशिश के रूप में चुकाई जाने वाली कीमत उसे हानिकारक मालूम पड़ती है।''

शहरों में पैदा होने वाले बुद्धिवादियों का रुख जब किसान की जीवन प्रणाली के प्रति तिरस्कार का नहीं होता तब वह कृपा का और आश्रयदाता का होता है। परंतु भद्र लोगों की तरह गांधीजी के मन मे किसान की जीवन प्रणाली के प्रति तिरस्कार नहीं था। भद्र लोग तो उसे सह्य बनाने के लिए गांवों को ''शहरी सुविधाओं का दान करते हैं।'' गांधीजी के मत से किसान धरती का नमक है, लोकतंत्र का आधार है। ''भारतीय ग्रामीण की बात तो यह है कि उसके गंवारपन की तह के नीचे युगों की पुरानी संस्कृति छिपी हुई है। ...उसके बाहरी गंवारूपन के नीचे आपको आध्यात्मिकता का गहरा भण्डार मिलेगा। ...पश्चिम में आपको यह बात नहीं मिलेगी। ...भारतीय किसान के ऊपर की यह तह उतार दीजिए, उसकी पुरानी दरिद्रता और निरक्षरता को मिटा दीजिये, फिर आपको संस्कृत, सभ्य और स्वतंत्र नागरिक कैसा होना चाहिए, इसका बढ़िया से बढ़िया नमूना ग्रामवासी में मिलेगा।''

सिद्धांत में सभी स्वीकार करते हैं कि भारत अपने गांवों में रहता है, इसलिए राज्य को गांवों की चिंता सबसे पहले और सबसे ज्यादा होनी चाहिए। परंतु जब गांवों को हानि पहुंचाकर शहरों को प्राप्त विशेषाधिकारों का मिटाने की बात आती है, और इसका अनिवार्य परिणाम जब इस बात में आता है कि जनता का धन गांवों पर उसी अनुपात में खर्च होना चाहिए जिस अनुपात में वह गांवों से वसूल किया जाता है, तब अत्यंत सदाशयी लोग भी बगलें झांकने लगते हैं और तरह-तरह के कुतर्क और भुलावे में डालने वाले बहाने करने लगते हैं। ये तर्क और ये बहाने ''प्रगति'' के दर्शनशास्त्र में विपुल मात्रा में मिल जाते हैं।

गांधीजी की बात बिलकुल सीधी थी : ''शहर जो धृष्टतापूर्ण अन्याय और अत्याचार करते रहते हैं, उनके कारण ग्रामजनों के जीवन और स्वातंत्र्य के लिए हमेशा खतरा बना रहता है।'' यदि शहर इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण देना चाहते हैं कि वहां के लोग भारत के ग्रामवासियों के लिए जियेंगे, तो उसके अधिकांश साधन और सम्पत्ति गरीबों की स्थिति सुधारने में खर्च होने चाहिए।'' इसके सिवा, ''शहर ग्रामजनों का शोषण कर रहे हैं और उनका धन खीचंकर ले जा रहे हैं।...मेरी योजना में शहर में ऐसी कोई चीज तैयार नहीं होने दी जायेगी, जो गांवों में उतनी ही अच्छी तरह तैयार की जा सकती है। शहरों का सच्चा काम यह है कि वे गांवों के माल को खपाने के साधन बने। ...गांवों को आत्म-निर्भर बनाना होगा। अगर हमें अहिंसा की दृष्टि से काम करना है, तो मुझे और कोई हल नजर नहीं आता।''

जीवित रहने की योजना में ग्रामीण जीवन-प्रणाली के अपने कुछ लाभ हैं और उसका अपना महत्व भी है। मिरिमय बिअर्ड ने अपनी पुस्तक 'हिस्टरी ऑफ दि बिजनेस मैन' में लिखा है, ''जमीन पर आधार रखने वाले लोग कष्ट पाते रहे, मगर जीवित रहे, शहरों में लोग फले-फूले - और धीरे-धीरे नष्ट हो गये।'' प्रकृति में शांत, स्वस्थ बुद्धिमानी और संतोश है, जो किसानों के जीवन में प्रतिबिम्बित होते हैं। उसे कभी कभी भूल से शिथिलता और मूढ़ता समझ लिया जाता है। परम्परागत ग्रामीण जीवन-प्रणाली से किसान को वह सुरक्षा मिल जाती है, जो अभी तक पश्चिम के उन्नत देशों में भी औद्योगिक जन-साधारण की आकांक्षा बनी रही है। बेकारी, बीमारी, संकट तथा वृद्धावस्था में मजदूर को वह सुरक्षा मिलेगी, यह उसे बता दिया जाता है। परंतु किसान को तो अपनी परम्परागत अर्थव्यवस्था में ही सुरक्षा प्राप्त हो जाती है। संभव है कि इससे उसे वैसे 'भौतिक लाभ न मिलें, जो....पश्चिम में राज्य द्वारा दिये जाते हैं, परंतु यह सुरक्षा ऐसी है जिसे किसान अपने ही हाथों से प्राप्त कर सकता है, और जो उसे अपने ही पैरों पर खड़ा रहने के लिए स्वतंत्र कर देती है।''

व्यक्ति और समाज दोनों मे निराशा और आक्रमण के बीच जो पारस्परिक संबंध है, वह सबको मालूम है। लड़ने की वृत्ति मनुष्य में जन्मजात होती है। उसे जड़ से नहीं मिटाया जा सकता। उसका रूपांतर ही किया जा सकता है। किसान की बात यह है कि धरती माता के साथ उसका गहरा सम्बन्ध उसमें आंतरिक सुरक्षा की भावना उत्पन्न करता है, जिसे वह स्वयं अपने प्रयत्न से प्राप्त कर सकता है। उसकी ''जन्मजात युद्धवृत्ति'' का जोश प्रकृति के साथ प्रतिदिन संग्राम करने में खर्च होता रहता है। इसलिए किसान स्वभाव से आक्रमणकारी नहीं होता। यही बात कारीगर पर भी लागू होती है। उसकी युद्धवृत्ति सृजनशील कार्य में प्रकट होती है और इसलिए उसमें भी अपनी विनाशक वृत्तियों को प्रकट करने की इच्छा नहीं रहती।

इसके अभाव में कारखाने का मजदूर अपने आसपास की स्वाभाविक परिस्थितियों से उखड़कर एक सांचे में ढली हुई व्यवस्था और सामूहिक मानस के वायुमण्डल में रहता है, उसे बेकारी और औद्योगिक अस्थिरता का हमेशा डर बना रहता है और इनको जन्म देने वाले कारणों पर उसका कोई काबू नहीं होता। इससे मजदूर एक ऐसा व्यक्ति बन जाता है, जो जुंग के शब्दों ''अस्थिर, अरक्षित और स्वतंत्र विचार की शक्ति खोकर दूसरों के विचारों में वह जाने वाला बन जाता है।'' निराशा से मानसिक रोगी होता है। ऐसे मजदूर में वह सामग्री मिल जाती है, जिसका तानाशाह और युद्ध के पुजारी अपने अपने उद्देश्य के लिए दुरुपयोग करते हैं।

यह सच है कि किसान भी मौसम की अनिश्चितताओं वगैरा का शिकार होता है। परंतु वह अपने परिश्रम, बुद्धि और कुशलता से उनके साथ जूझ सकता है। अंत में वह किसी तरह निर्वाह करने के लिए सहायक धंधों का सहारा तो ले ही सकता है। उसे निराशा अनुभव नहीं होती। इसलिए स्वभाव से ही किसान ओर कारीगर को समाज शांतिप्रिय होता है। प्रो.सीगनोब्स कहते हैं, ''भूस्वामी किसानों के लोकतंत्र से अधिक शांतिप्रेमी राज्य दूसरा कोई नहीं

होता। जब से दु नियापैदा हु ई है तब से ऐसे किसी समुदाय ने न तो कभी युद्ध की इच्छा की और न युद्ध की तैयारी अथवा शुरुआत ही की।''

लेकिन जहां किसान स्वभाव से आक्रमणकारी नहीं है, वहां वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए ल ड़नेवाला अत्यंत प्रचंड योद्धा भी है। ''अन्न पैदा करने वाला किसान आजाद के अंतिम दु र्गहोते हैं।'' विल्फ्रेड वेलॉक के शब्दों में, ''किसान के हाथ में वह शस्त्र है, जो वोट से अधिक शक्तिशाली होता है। वह ओजस्वी भाषा का प्रयोग भले न कर सके, परंतु जब हम सबके मरने की नौबत आ जाये तब भी वह जिंदा रह सकता है।''

किसान प्रकृति की प्रक्रियाओं में भाग लेता है। उसने अनुभव से यह सीख लिया है कि इनकी गति को जबरन कभी भी ब ढ़ायानहीं जा सकता। इसलिए ''उसकी मान्यताओं में स्थिरता और अविचलता'' आ जाती है और उसमें धीरज, लगन और अध्यवसाय के गुण उत्पन्न हो जाते हैं, जिनके कारण ''राजनीतिक संग्राम में संलग्न होने पर वह अजेय'' बन जाता है। जैसा डॉ. मिट्रानी ने कहा है : ''किसान की शक्ति उसके कार्य में नहीं, परंतु उसके प्रतिरोध में रहती है।'' टिल्टमेन ने, जो इस विशय के दू सरेविशेषज्ञ हैं, लिखा है कि किसान सारे इतिहास में सबसे शांत प्रतिकार करने वाला रहा है। जेफर्सन ने पारिवारिक खेती और लोकतंत्र को एकरूप बताया है।

गांधीजी का मत था कि किसानों और कारीगरों के प्राणवान समुदायों पर आधारित समाज-व्यवस्था लोकतांत्रिक स्वतंत्रता का वास्तविक स्तंभ सिद्ध होगी और भारत की ओर से कोई आक्रमणकारी या विस्तारवादी वृत्ति अपनाने के विरुद्ध स्वाभाविक आष्वासन रहेगी। ऐसी समाज-व्यवस्था विश्व शांति का एक शक्तिशाली साधन होगी।

गांधीजी की अर्थव्यवस्था के मुख्य अंग है : सघन, छोटे पैमाने की, व्यक्तिगत और विभिन्न फसलों वाली खेती - जिसे सहकारी प्रयत्न का सहारा हो, न कि यांत्रिक और ब ड़ेपैमाने पर की जाने वाली सामूहिक खेती, खेती के सहायक गृह-उद्योगों का विकास, पशुओं पर आधारित अर्थ-व्यवस्था जिसमें ''लौटाने का नियम'' सख्ती से अमल में लाया जाय - यानी जो कुछ धरती से निकाला जाय उसे सजीव रूप में धरती को लौटा दिया जाय, पशु, मानव और वनस्पति-जीवन का ठीक संतुलन और एक-दू सरे के लाभ के लिए उनका परस्पर सम्बन्ध और सामाजिक योगक्षेम के लिए यंत्रों की प्रतिस्पर्धामें मानव और पशु दोनों शक्तियों की स्वेच्छासे रक्षा।

अपने को अधिक बुद्धिमान मानने वाले आलोचकों ने कभी कभी इसे ''अप्रगतिशील, विज्ञान से पहले का मध्यकालवाद'', गोबर-युग में वापस जाना'' और ''बैलगा ड़ीकी मनोवृत्ति'' बताया है। सच बात तो यह है कि गांधीजी अपने समय से बहु त आगे थे। लेकिन मूलत: वे कर्मठ पुरुष और मौलिक विचारक थे, इसलिए वे अपने विचारों को जान-बूझकर आम लोगों की सादी भाषा में जामा पहनाना पसंद करते थे। उन्हें इन्हीं लोगों के द्वारा अपनी क्रांति को कार्यान्वित करना था, इसलिए वे अपने विचारों को प्रकट करने के लिए शब्दाडंबरवाली प्रचलित वैज्ञानिक भाषा का उपयोग नहीं करते थे।

सच्ची खेती का मूल लक्षण यह है कि ''वह व्यापार-व्यवसाय नहीं, परंतु एक जीवन-प्रणाली है।'' लॉर्ड नॉथबोर्न के शब्दों में, ''खेती मनुष्य का अंग है और मनुष्य खेती का अंग है। जब जमीन का उपयोग उसे नकद पैसे में बदलकर धनवान बनने के साधन के रूप में किया जाता है, तब वह ''जमीन पर बलात्कार' हो जाता है।

पहले जब खेती जीवन की एक प्रणाली थी तब न केवल किसान की बल्कि शहरी समाज की भी प्रतिवर्ष होने वाली जमीन की पैदावार में गहरी दिलचस्पी रहती थी। लेकिन आज यदि जमीन के कसहीन बन जाने से या किसी और कारण से जमीन की पैदावार घट जाती है, तो शहर के लोगों को उस समय तक उसकी चिंता नहीं होती जब तक और कहीं से उन्हें सस्ता अन्न मिलता रहता है। औद्योगिक मजदू रोंकी जरूरतें पूरी करने के लिए एक के बाद दू सरे देश की जमीन बरबाद हो जाय तो इसकी उन्हें कोई चिंता नहीं होती। हमेशा किसी न किसी और साधन से उनका काम चल जाता है। परिवहन और अन्नरक्षा की सुविधाएं ब ढ़ाने से दू सरीचीजों की तरह जमीन की उर्वरता का भी रुपयों के साथ विनिमय कर लेने का अदम्य प्रलोभन पैदा हो गया है और सभ्यता तथा भूमि के बीच का सजीव संबंध कट गया है। व्यापार-व्यवसायऔर उद्योगों द्वारा होने वाली जमीन की इस ''अत्यंत लाभदायक लूट'' के कारण कुछ देश आर्थिक दृष्टि से अत्यंत धनवान हो गए हैं, परंतु उनकी धरती गरीब होती गई है।''

महात्मा गांधी : पूर्णाहु ति भाग 4 : भावी समाज की रचना की दिशा में

# ग्रामसेवा

- विनोबा

## देहात : सेवा का स्थान

मैंने एक सूत्र बनाया है - 'सेवा व्यक्ति की, भक्ति समाज की।' व्यक्ति की भक्ति में आसक्ति बढ़ती है, इसलिए भक्ति समाज की करनी चाहिए। समाज की सेवा तो हम करना चाहेंगे तो भी नहीं कर सकते। समाज तो एक कल्पना मात्र है, सेवा प्रत्यक्ष वस्तु की ही हो सकती है, अप्रत्यक्ष वस्तु की नहीं। समाज अप्रत्यक्ष, अव्यक्त या निर्गुण है।

असली सेवा करनी हो, सेवामय बन जाना हो, सेवा में खुद को खपाना हो, तो किसी देहात में जाइए। एक भाई ने मुझे कहा, ''आप बुद्धिमान लोगों से कहते हैं कि देहात में जाइए। विशाल बुद्धि के विस्तार के लिए वहां लंबा-चौड़ा क्षेत्र कहां है ?'' मैंने कहा - ''ऊँचाई तो है ? देहात में लंबा सफर नहीं हो सकता, लेकिन उंचा तो हो सकता है ? गहराई में तो जा सकते हैं ?'' ऊँची और गहरी सेवा देहात में खूब हो सकती है। वह एकाग्र सेवा अव्वल दर्जे की होगी और फलदायक होगी।

राष्ट्र के सारे प्रश्न देहात के व्यवहार में आ जाते हैं। जितना समाजशास्त्र राष्ट्र में है, उतना एक परिवार में भी है। फिर देहात में तो वह रहेगा ही। समाजशास्त्र के अध्ययन के लिए देहात में काफी गुंजाइश है। हिंदुस्तान की राजनीति का नमूना भी देहात में पूरा मिल जाता है। एक देहात की जनता को भी अगर हम स्वावलंबी बना सकें, तो समझें कि काफी कुछ कर लिया।

देहात ही हमारे आधार हैं। हमारी आत्मा है। हमारा असली रूप है। पुराने ऋषि को आज के देहाती की पोशाक में भले ही फर्क लगे, परंतु उनकी आत्मा अब भी वैसी ही है। भावना में कोई फर्क नहीं हुआ है। खुद भूखा होते हुए भी वह किसी भी तरह अपने अतिथि को भोजन करवाने की फिक्र करता है। लेकिन आज इन्हीं देहातों की दौलत, बुद्धि, शक्ति सब बाहर जा रही है। इसे रोकना होगा। खेती, गोसेवा, बढ़ईगिरी, कपड़ा, तेलघानी आदि को मदद देनी होगी। देहातवाले ही देश की रक्षा कर सकते हैं। जमीन के लिए उन्हें इतना प्यार होता है और वे उससे ऐसे चिपके रहते हैं कि उसके लिए मर मिटते हैं। इसलिए उनकी सेवा द्वारा उन्हें बलवान बनाना ही सर्वोदयवालों का काम है।

देहात सेवा का स्वाभाविक क्षेत्र है, घर नहीं। क्योंकि घर प्रेम का स्थान नहीं, आसक्ति का स्थान है। घर में हम केवल उपकार करते ही नहीं, बल्कि उपकार लेते भी हैं। वहां हमारा हक रहता है। गांव का नाम लिया, तो उसमें घर और शरीर आ ही जाते हैं, उनकी सेवा अपने-आप होती है। इसके विपरीत, घर या शरीर की सेवा करने जाएंगे तो गांव से बैर हो सकता है। लेकिन क्या गांव की आसक्ति नहीं हो सकती ? नहीं, क्योंकि हम चाहते हैं कि व्यापक वृत्ति से गांव की सेवा करें। इसलिए हम एक तरफ 'जय ग्रामदान' कहते हैं, तो दूसरी तरफ 'जयजगत'। हमारी ग्रामसेवा विश्वहित से अविरोधी ही नहीं, बल्कि पूर्णत: विश्वहित की साधक है।

देहात यह युनिट यानी घटक व्यक्ति है। घटक काफी बड़ा रहा, तो अव्यक्त बन जाता है। अव्यक्त का आकलन नहीं हो सकता। इसलिए सेवा का क्षेत्र व्यक्त यानी थोड़ा सीमित होना चाहिए। इसके अलावा, वह कामना का क्षेत्र न हो। घर का युनिट छोटा है, लेकिन वह कामना-क्षेत्र है, इसलिए घर की सेवा को परमार्थ-सेवा का रूप नहीं दिया जा सकता।

## गांवों में कैसे जायें ?

हमारे मन में गांवों में जाने बात उदित हुई है, लेकिन हम अभी गांवों में अपने शहरी ठाठ-बाट के साथ जाना चाहते हैं। इससे हमारा काम जमता नहीं। लोगों की मन:स्थिति का हमारे कार्यकर्ताओं की मन:स्थिति से मेल नहीं बैठता। हम पाश्चात्य विद्या सीखे हुए हैं। इसलिए उन्हीं की भाषा में हमारे विचार ढाले गये हैं। इसलिए जनता में प्रवेश कैसे करना यह हमें सूझता नहीं।

गांवों में ग्रामीण होकर जाना चाहिए। लेकिन हम वैसे जाते नहीं, यही हमारी असफलता का मुख्य कारण है। गांव में गया हुआ सुशिक्षित मनुष्य आज भी ग्रामीण तो नहीं ही बन पाया, पर वह वहां परोपकार करना चाहता है। उसे गांववालों से खुद कुछ सीखना है, यह वह भूल जाता है। उसे लगता है कि 'ये बेचारे अज्ञान में पड़े हैं।' अपना घोर अज्ञान उसे दिखायी नहीं देता और खुद उसे क्या करना चाहिए, इसे भूलकर वह लोगों से काम लेने के फेर में पड़ जाता है। इस वजह से वह ग्राम-जीवन से बिलकुल अलग-सा हो जाता है।

अपनी सुशिक्षितपन की आदतें छोड़कर हमें गांव में जाना चाहिए, गांववालों को शिक्षा देने की वृत्ति लेकर नहीं जाना चाहिए, और खुद काम में लगना चाहिए, ये तीन महत्वपूर्ण बातें हमें ध्यान में रखनी चाहिए।

## ग्रामसेवा के लिए जरूरी बातें

ग्राम-रचना का काम चारित्र्यबल के अभाव में संभव नहीं है। ग्रामीण लोग बुनियादी गुणों से चारित्र्य नापते हैं। और यही असली नाप है। प्राथमिक सद्गुण यानी आलस्य का अभाव, निर्भयता, प्रेम इत्यादि। वक्तृत्व, विद्वत्ता इत्यादि ऊपरी-ऊपरी उपार्जित गुण गांव के लिए उपयोगी नहीं रहते।

ग्रामसेवक को अपने काम का पूरा हिसाब - हर क्षण का - रखना चाहिए। गांव के लोगों के मन में उद्योगी मनुष्य के लिए आदर रहता है।

गांव में काम करने वाले में भक्ति की लगन होनी चाहिए, भाव होना चाहि। यह प्राथमिक सद्गुणों का राजा है। लेकिन अपने लोगों की पवित्र भावना में अभी हम रमें नहीं हैं, यह हमारी निष्फलता का बहुत बड़ा कारण है। गांव के लोगों में वहम, अंधविश्वास हैं, वे हममें नहीं होने चाहिए, लेकिन उनमें जो कीमती भावनाएं हैं, वे तो हममें होनी ही चाहिए। लेकिन वे नहीं होतीं। भजन से हम उबते हैं। भगवान के नाम से हमारे हृदय में भावना की बाढ़ आनी चाहिए, पर वह नहीं आती। भगवान, धर्म, संतों के बारे में पूरी कल्पना न रखने वाले गंवारों में जो भक्तिभाव होता है, वह उनके संबंध में वास्तविक और यथार्थ ज्ञान रखनेवालों में उनसे सौ गुना ज्यादा होना चाहिए। पर हमें उनके संबंध में बिलकुल ज्ञान नहीं होता। इतना ही नहीं, भान भी नहीं होता, गिर हुआ तो विपरीत ज्ञान भरपूर होता है। इस वजह से जनता के हृदय से हमारा हृदय मिल नहीं पाता। जनता में विद्यमान योग्य भावनाएं जिसमें नहीं हैं, वह जनता की अयोग्य भावनाएं कैसे निकाल सकेगा ?

...देहातियों से समरस होने का ठीक-ठीक मतलब समझना चाहिए। उनका रंग हम पर भी चढ़ जाये, इसका नाम उनसे मिलना नहीं। समाज के प्रति आदर का जितना महत्व है, उतना परिचय का नहीं है। समाज के साथ समरस होने से उसका लाभ ही होगा ऐसी बात नहीं। अगर हम ऐसा मानें तो उसमें अहंकार है। हम क्या कोई पारस पत्थर हैं कि हमारे केवल स्पर्श से समाज की उन्नति होगी ? केवल समाज से समरस होने से काम होगा ऐसा मानने में जड़ता है। रामदास कहते हैं - ''मनुष्य को ज्ञानी और उदासीन होना चाहिए। समुदाय की आकांक्षा होनी चाहिए, लेकिन स्थिर होकार एकांत-सेवन करना चाहिए।' एकांत सेवन से आत्मपरीक्षण का मौका मिलता है। लोगों से किस हद तक संपर्क बढ़ाया जाय यह ध्यान में आता है। समाज में सेवा के लिए ही जाना चाहिए। बाकी का समय स्वाध्याय और आत्मपरीक्षण में बिताना चाहिए। आत्मपरीक्षण के बिना उन्नति नहीं हो सकती। अपने स्वतंत्र समय में हम अपना एकआध प्रयोग भी करें। बगीचे का शौक हो तो बगीचा लगायें। जो आये उससे बोलने में समय बिताना सेवा नहीं है। कार्यकर्ता को स्वाध्याय और चिंतन के लिए अलग समय रखना ही चाहिए। यह भी देहात की सेवा ही है। सच्चे सेवक के पास सेवा अपने-आप हाजिर होती है। उसे प्रसंग ढूंढते फिरना नहीं पड़ता।

हममें एक और दोष है - त्याग की प्रतीति। हमसे थोड़ा-बहुत त्याग होता है, लेकिन त्याग की प्रतीति त्याग को मार डालती है। त्याग करके हम किसी पर कोई एहसान नहीं करते। इसके सिवा, हमारा त्याग शहर की निगाह से 'त्याग' माना भी जाये, तो गांव के हिसाब से उसकी कोई खास कीमत नहीं रहती। गांव में तो बहुत ही ज्यादा त्याग की अपेक्षा है। स्वयं गांव के लोग चाहे मजबूरी से ही क्यों न हो - त्याग से ही रहते हैं। उस हिसाब से हमारा त्याग किसी गिनती में नहीं है। और फिर उसकी प्रतीति! इससे सेवा ठीक तरह नहीं हो पाती।

## ग्रामसेवकों के लिए सुझाव

जब हम सेवा करने का उद्देश्य लेकर देहात में जाते हैं, तब हमें यह नहीं सूझता कि कार्य का आरंभ कैसे करना चाहिए। हम शहरों में रहने के आदी हो गये हैं। देहात की सेवा करने की इच्छा ही हमारी पूंजी होती है। अब सवाल यह खड़ा होता है कि है कि इतनी थोड़ी पूंजी से व्यापार किस तरह शुरू करें। मेरी सलाह तो यह है कि हमें देहात जाकर व्यक्तियों की सेवा करने की तरफ अपना ध्यान रखना चाहिए। इतना खयाल जरूर रखना होगा कि इममें अन्य व्यक्तियों की हिंसा, नाश या हानि न हो। ग्राम-जीवन में प्रवेश करने का यही सुलभ तथा सफल मार्ग है। मैं यह अनुभव कर रहा हूं कि जिन्होंने मेरी व्यक्तिगत सेवा की है, उन्होंने मेरे तीवन पर अधिक प्रभाव डाला है। गांधीजी के लेख मुझे कम याद आते हैं, परंतु उन्होंने अपने हाथ से जो खाना परोसा है, वह मुझे रोज याद

आता है। और मैं यह मानता हूं कि उसके कारण मेरे जीवन में बहुत परिवर्तन हुआ है। यह व्यक्तिगत सेवा का प्रभाव है। और एक सूचना मैं करना चाहता हूं। हमें देहातियों के सामने ग्रामधर्म की कल्पना रखनी चाहिए, न कि राष्ट्रधर्म की। उनके सामने राष्ट्रधर्म की बातें करने से कोई लाभ नहीं होगा। ग्रामधर्म उनके लिए जितना स्वाभाविक है और सहज है, उतना राष्ट्रधर्म नहीं। ग्रामधर्म सगुण, साकार और प्रत्यक्ष होता है, राष्ट्रधर्म निर्गुण, निराकार और परोक्ष होता है। आपस के झगड़े मिटाना, गांव की सफाई तथा स्वास्थ्य का ध्यान रखना, आयात-निर्यात की वस्तुओं और ग्राम के पुराने उद्योगों की जांच करना, नये उद्योग खोज निकालना इत्यादि गांवों के जीवन-व्यवहार से संबंध रखने वाली हरएक बात ग्रामधर्म में आ जाती है।

तीसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं वह है सेवक के रहन-सहन के संबंध की। सेवक की आवश्यकताएं देहातियों से कुछ अधिक होने पर भी वह ग्रामसेवा कर सकता है। लेकिन उसकी वे आवश्यकताएं विजातीय नहीं, सजातीय होनी चाहिए। किसी सेवक को दूध की आवष्यकता है, दूध के बिना उसका काम नहीं चल सकता, और देहातियों को तो घी-दूध आजकल नसीब नहीं होता, तो भी देहात में रहकर वह दूध ले सकता है। देहात में उपलब्ध होने वाले साधनों से ही जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की ओर उसकी हमेशा दृष्टि रहनी चाहिए। सजातीय वस्तु का उपयोग करने से सेवक को विवेक और संयम की आवश्यकता तो रहती ही है।

हमें इसके लिए जोरों की कोशिश करनी चाहिए कि देहातों का रहन-सहन कैसे ऊपर उठेगा, और हमारा कैसे उतरेगा। हम अपनी आवश्यकताएं कम करें और देहातियों की आवश्यकताएं तथा उनकी कमाई बढ़ाएं और इस तरह दोनों के जीवन में जो अंतर है, उसे कम करें।

यह न समझें कि गांवों के लोग कम पढ़े-लिखे हैं, इसलिए अल्प-स्वल्प विद्या से काम चल जाएगा। वहां विद्या की कसौटी होगी। यह कहने की आदत-सी हो गयी है कि गांववाले आलस में समय गंवाते हैं। यह सही है कि शहरों की तरह गांवों में भी कुछ लोग निरुद्योगी हुआ करते हैं। किंतु जो लोग काम करते हैं, वे इतना काम करते हैं कि उससे अधिकी की आशा नहीं की जा सकती। इसलिए गांव में हमारी उद्यमशीलता कम सिद्ध हुई तो हम असफल ही होंगे।

गांवों में आपके सामने विराट संसार खुल जाएगा। अनेक स्त्री-पुरुशों से संबंध आयेगा। उनके गुणों की तरफ ही हमारी नजर जानी चाहिए, दोषों की तरफ नहीं। गुणों के द्वारा ही मनुष्य के चित्त में प्रवेश करना चाहिए। उसी तरह से प्रवेश आसानी से हो सकेगा। इसलिए गुणग्राहक वृत्ति हो। सच तो यह है कि हमें हर स्त्री-पुरुष में भगवान के दर्शन होना चाहिए। फिर हमारा काम सुलभ होगा।

दुनियां में अनेक वाद और अनेक दल हैं। सेवकों को उन सभी से अलग रहना चाहिए। हमारे लिए दुनियां में दो ही पक्ष हैं - एक स्वामी और दूसरा सेवक। हम सेवक, बाकी सारे स्वामी। स्वामी की सेवा यही सेवक का धर्म है। निष्पक्ष रहकर सेवा करनी चाहिए। हमारी सेवा से कौन खुश हुआ और कौन नाराज, इससे हमें कोई मतलब नहीं। हृदयस्थ भगवान प्रसन्न हो तो काफी है।

एक बात और। उद्योग और विद्या अलग-अलग नहीं है। इन्हें जहां अलग किया जाता है, वहां दोनों निरुपयोगी हो जाते हैं। गांव में आपको तरह-तरह के काम करने होंगे। व्यवस्था देखना, हिसाब लिखना, पढ़ाना, कभी व्याख्यान देना इत्यादि काम करने ही पड़ते हैं। मेरा कहना है कि वे सब करते हुए भी आपको रोज कुछ समय प्रत्यक्ष उद्योग में लगाना चाहिए। इससे आपकी विद्या ताजी रहेगी, नयी खोजें समझ में आती रहेंगी और नयी चीजें सूझती रहेंगी। कई बार देखा जाता है कि उद्योग में प्रवीण लोग भी शरीर-परिश्रम करना भूल जाते हैं। कहते हैं कि समय नहीं मिलता। लेकिन इससे कार्यकर्ताओं की और उनके काम की हानि होती है। इसलिए उद्योग में प्रतिदिन कुछ समय बिताना चाहिए। उसे ग्रामसेवा का एक अंग ही समझना चाहिए।

गांव में जाएंगे तो वहां जमीन कंडीमिलेगी। सभी असुविधाएं वहां होंगी। लेकिन हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। धीरज रखना चाहिए। छोटी-छोटी बातों का भी पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए, नहीं तो उनके ज्ञान के अभाव में काम रुक जाएगा।

...ग्रामसेवा का काम स्वावलंबी होना चाहिए। अगर ग्रामसेवा के काम में सरकारी मदद लेते हैं, तो हमारा तेज खत्म हो जाएगा। ग्रामसेवा के काम में चाहे हमारे पिता भी मदद क्यों न दें, हम नहीं लेंगे। मैं यह नहीं मानता कि गांवों का उद्धार बाहरवाले जाकर करें। वह तो गांवों को खुद ही करना है। -विनोबा साहित्य खण्ड 18

# हवा में बुना हुआ जाल

- कुंदर बलवंत दिवाण

नीचे का बयान सर्जन जनरल बाल्फोर के हिंदुस्तानी विश्वकोश से - जो सन् 1858 में पहले-पहल प्रकाशित हुआ था- लिया गया है। दो सौ साल पहले ढाका में किस तरह की मलमल तैयार की जाती थी, इसकी एक अनोखी झांकी उससे हमें मिलती है। ढाका की मलमल इंसान की दस्तकारी की अजीब तरकीब की एक जिंदा मिसाल है, लेकिन आज वह पुराने जमाने की एक कहानी हो गयी है। हिंदुस्तान के कारीगरों की इस पुरानी कला में आज नयी जान फूंकना शायद मुमकिन न हो, फिर भी मुआफिक हालातों और बढ़ावा मिलने पर दस्तकारी कितनी तरक्की कर सकती है, इसे दिखाने के लिए काफी सबूत आज हम दे सकते हैं। अनोखी बात यह है कि आगे जो महीन सूत की कताई का बयान दिया जा रहा है उसमें कताई का औजार चरखा नहीं है, मामूली तकली है, जिस पर हिन्दू औरतें महीन से महीन सूत कातती थीं। छोटी-सी तकली में कितनी भारी ताकत भरी है इसका यह एक सबूत है। तकली की ताकत को आज फिर से काम में लाने के लिए हमें कोशिश करनी है।

कुछ दिन पहले ढाका के हिन्दू अपने मोटे-झोटे औजारों से मलमल तैयार करते थे, इसके बारे में डॉ.यूर ने कहा है कि 'यूरोपवालों की कारीगरी इनका मुकाबला नहीं कर सकती। इस मलमल को देखकर एक कताई का माहिर कह उठा कि इंग्लैंड में कते हुए ऊंचे से ऊंचे नंबर के सूत से भी बहुत महीन सूत पूनी और तकली के जरिये किस तरह काता जाता है और किस औजार से उसे बुना जाता है, यह बात मेरी सूझ के बाहर है।

'बावल मछली' के जबड़े की हड्डी के दांत कुछ भीतर की तफर मुड़े हुए और घने होते हैं। कपास में से धूल के महीन कण और पत्ती, कचरा वगैरह अलग करने के लिए इन्हें काम में लाया जाता है। इस औजार से कत्तिन अटूट धीरज के साथ इस कौम की यह खासियत है - कपास का हरेक ढोढा साफ करने का मेहनती काम शुरू करती है। उसे खतम कर देने पर यह एक लोहे के बेलन से दो लम्बी काठी बिनौले से रुई अलग करती है। एक चौरस पटिया पर कपास के कुछ ढौढे बिछाकर उन पर बेलन आगे-पीछे चलाया जाता है। बाद में आंत की दो हरी तांत से मूंगा-रेशम से या केले के पेड़ के रेशों के बटे हुए डोरे से सजाये हुए बांस की कमान से रुई को धुनते हैं। कमान या धनुश से रुई के रेशे जब उन की तरह अलग-अलग हो जाते हैं तब उसकी भोंगली की तरह लंबी बत्ती पूनी बनायी जाती है। कातते वक्त बत्ती को हाथ में पकड़ते हैं। कातने की चीजें छोटी डलिया या परई में रखते हैं। यह डलिया या परई यूनान की पुरानी कैथेटर जैसी होती है। उसमें साफ लोहे का एक नाजुक तकुआ रखा जाता है, जिसे घुमाने के लिए मिट्टी की गोली का वजन लगाया जाता है। तकुए को मिट्टी में फंसाये हुए सीप के कड़ेटुकड़े पर टिकाकर घुमाते हैं। इस औजार से हिन्दू औरतें अरकनी की कताई के खयाली हुनर की करीब-करीब बराबरी करती हैं।

इससे जो धागा निकलता है वह बहुत बारीक होता है। इसमें कोई शक नहीं कि इनकी इस बेजोड़ कारीगरी का दारोमदार उनके बदन की नाजुक बनावट पर और उनके कुदरती छूने की ताकत पर है। बहुत बारीक सूत बड़े सवेरे सूरज की गर्मी से ओस उड़ जाने के पहले ही काता जाता है। क्योंकि उसके रेशे इतने नाजुक होते हैं कि दिन की सूखी व गरम हवा में कातने से टूट जाते हैं। कपास के रेशों को आपस में चिपका रखने वाला जो चिपचिपा रस होता है, वह गरम और खुष्क हवा से सूखकर बिगड़ जाता है। इसलिए जब सबेरे ओस नहीं पड़ती या हवा में नमी नहीं होती तब कातने वाले पानी से भरे हुए चौड़े बर्तन पर सूत निकालकर नमी की जरूरत पूरी करते हैं।

सन् 1846 में ढाका में डॉ.टेलर ने एक नमूने की जांच की, जिसकी लंबाई 1339 गज और वजन सिर्फ 22 ग्रेन था। अनाज तौलने के पौंडके हिसाब से एक पौंड वजन के सूत की लम्बाई 250 मील से भी ज्यादा होगी यानी इस सूत का नंबर 500 से भी उंचा 511 से कम होगा। ताना पूरने से पहले इस महीन सूत को एक-दो दिन कोयले की बारीक बुकनी का काजल मिले पानी में डुबोकर भिगोया जाता है। बाद में उसे साफ पानी से धोकर व निचोड़कर छाया में सुखाते हैं। सुखाने के बाद उस पर भुने चांवल, बारीक चूना और पानी से बनायी हुई लेई चढ़ायी जाती है। धान का छिलका गर्म बालू से

अलग किया जाता है। करघा इतना हल्का होता है कि उसे आसानी से चाहे जहां उठाकर ले जा सकते हैं। करघे में तुरी, बीम, बेलन, नला वगैरह हिस्से होते हैं।

'मलमल की बुनाई की ढाका खास जगह थी। मलकल ढाका के नाम से मशहूर थी। पुराने जमाने में उसे बादे-बाफ्ता यानी हवा में बुना हुआ कहते थे। ढाका की मलमल की खास-खास किस्में थीं। इरवास, आबेरवां, शबनम, खास, झूना, सरकारआली तनजेब, अलाबुली, नैनसुख, बद्दन खास, तुरानदम, शरबती, सरबंद वगैरह। इन नामों से मलमल की बारीकी, खूबसूरती, झीनी पोत, बुनाई की जगह या किस किस्म की पोशाक में वह काम में आती है, वगैरह बातें मालूम होती हैं। सबसे महीन मलमल-ए-खास थी। मलमल-ए-खास का मतलब है शाही खानदान या बड़े-बड़ों लोगों के लिए बनायी हुई खास मलमल। इसकी लम्बाई 10 गज और चौड़ाई गज होती थी। उसके ताने में 1900 धागे होते थे। और वजन 10 सिक्के करीब 3 औंस होता था। महीन से महीन मलमल का आधा थान, जो अभी तक देखने में आया है, 9 रुपये भर का था और उसकी कीमत 100 रुपये थी। मलमल की कई दूसरी किस्में भी करघे की कारीगरी का बढ़िया नमूना थीं। मसलन जिसका मुकाबला वहां के लोगों ने बहते हुए पानी से किया है, वह आबेरवां मलमल, भिगोकर धूप में सुखाने के लिए बिछाने पर ओस की तरह दिखायी देती है वह शबनम, इसी तरह झूना मलमल जो खानदानी और रईस लोगों के लिए बनायी जाती थी और जनानखाने की सुंदरियां पहनती थीं। झूना जाल की तरह हलकी और झीनी होती थी। ग्रीक और लेटिन की किताबों में इसी को वेंटम टेक्सटाइल नाम दिया गया है। ये सब मलमलें 20 गज लम्बी और एक गज चौड़ी बुनी जाती थीं। लेकिन हरेक किस्म के ताने में धागों की तादाद अलग-अलग होती थी। धारीदार डोरिया, चौकड़ीदार खारखानी और बूटेदार जामदानी वगैरह मलमल की किस्मों में काफी फर्क होता था। बूटेदार मलमल की मांग हिंदुस्तान और विलायत में खूब थी। इसकी बुनाई ढाका की सब मलमलों से ज्यादा महंगी होती थी। महीन से महीन मलमल का ठेका सिर्फ दिल्ली की बादशाहत के मातहत था। औरंगजेब बादशाहत के लिए जो मलमल तैयार की जाती थी उसके आधे थान की कीमत 260 रुपये होती थी। लेकिन अब यह मलमल 80 रुपये से ज्यादा कीमत की शायद ही बनायी जाती है।

- तकली से साभार

**राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार 29 फरवरी 2012 तक देश में दुग्ध उत्पादन और प्रति व्यक्ति दूध की खपत निम्नानुसार रही :**

| वर्ष | उत्पादन मिलियन टन में | प्रतिव्यक्ति उपलब्धता |
|---|---|---|
| 1991-92 | 55.7 | 178 |
| 1992-93 | 58.00 | 182 |
| 1993-94 | 60.6 | 187 |
| 1994-95 | 63.8 | 194 |
| 1995-96 | 66.2 | 197 |
| 1996-97 | 69.1 | 202 |
| 1997-98 | 72.1 | 207 |
| 1998-99 | 75.4 | 213 |
| 1999-2000 | 78.3 | 217 |
| 2000-2001 | 80.6 | 220 |
| 2001-2002 | 84.4 | 225 |
| 2002-2003 | 86.2 | 230 |
| 2003-2004 | 88.1 | 231 |
| 2004-2005 | 92.5 | 233 |
| 2005-2006 | 97.1 | 241 |
| 2006-2007 | 102.6 | 246 |
| 2007-2008 | 107.9 | 252 |
| 2008-2009 | 112.2 | 258 |
| 2009-2010 | 116.4 | 273 |
| 2010-2011 | 121.8 | 281 |

## दूध उत्पादन में पंजाब अव्वल

**चण्डीगढ़।** देश में अनाज के कटोरे के नाम से विख्यात पंजाब दूध उत्पादन में पहले नंबर पर है। वर्ष 2011-12 में पंजाब में 95.4 लाख मीट्रिक टन दूध उत्पादन हुआ है। यहां पर भारत में सर्वाधिक 944 ग्राम प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता है। पंजाब के पशुधन ने देश की अर्थव्यवस्था में हमेशा से ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पंजाब के पशुपालन मंत्री गुलजार सिंह रानिके ने कहा कि देश की आय में 13% योगदान पशुधन का है।

# मांस निर्यात से सब्सिडी हटाएं

**नागपुर।** केंद्र सरकार मांस के व्यापार और निर्यात पर दी जा रही सब्सिडी समाप्त करे। सब्सिडी से दूध की उपलब्धता में कमी होगी है। सुकृत निर्माण चेरिटेबल ट्रस्ट के मैनेजिंग ट्रस्टी कनकारी सवादिया ने यह मांग की है। विदर्भ में गाय को बचाने के काम में लगे श्री सवादिया ने कहा कि कतलखाने में जवान और उपयोगी जानवरों का कतल किया जा रहा है। यदि इसे रोका नहीं गया तो देश में दूध की किल्लत हो जाएगी। वाणिज्य और उद्योग मंत्री आनंद शर्मा को दिए गए ज्ञापन में श्री सवादिया ने कहा कि दूध और मांस की बढ़ती कीमतें इसका संकेत दे रही हैं। भैंसों का अवैध कतल किया जा रहा है। पशुओं के कतल का सीमांत किसानों पर विपरीत प्रभाव हो रहा है। वे अपने पशु बेचने पर मजबूर हैं, लेकिन वे नये पशु खरीदने की स्थिति में नही हैं। कतलखाने अपने निर्यात वचन को पूरा करने के लिए उत्पादक पशुओं का कतल कर रहे हैं।

श्री सवादिया ने कहा कि भारतीय किसान पशुओं से न केवल दूध लेता है बल्कि खेती में भी उसका उपयोग करता है। जब पशु दोनों ही काम का न होकर बोझ हो जाता है तब वह चाहे जिस कीमत पर अपने पशु मांस निर्यात में लगे लोगों को बेच देता है। व्यापारी बहुत कम कीमत पशु खरीदते हैं और उनका कतल कर देते हैं। निर्यात की मांग को देखते हुए अनधिकृत कतलखानों में दुधारू पशुओं का कतल भी किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि कतलखाने स्थानीय निकाय द्वारा स्थानीय जनता की पूर्ति के लिए बनाये गये हैं। लेकिन वहां से मांस निर्यात किया जा रहा है। यह पूरी तरह अवैध है।

केंद्र और राज्य सरकारें अपने अत्याधुनिक कतलखाने बनाने के लिए ढेर सारा अनुदान दे रही हैं। अपेडा नामक संगठन मांस परिवहन के लिए 25 से 60 प्रतिशत तक का अनुदान दे रहा है। इसमें ब्रांड पब्लिसिटी, गुणवत्ता नियंत्रण, पैकेजिंग भी सम्मिलित है। इन्हें आयकर और वाणिज्य कर से भी छूट प्राप्त है। अत्याधुनिक कतलखाने निजी क्षेत्र में स्थापित किए गए हैं। मुनाफाखोरी के चलते ये कतलखाने पर्यावरणीय मानकों पर भी खरे नहीं उतरते। इस कारण कतलखाने के क्षेत्र में बीमारियां फेल रही हैं। श्री सवादिया ने श्री शर्मा से मांस के व्यापार पर दी जाने वाली समस्त सब्सिडी को समाप्त करने की मांग की है।

# कतलखानों की जानकारी

| क्र. | कम्पनी | प्रोसेसिंग प्लांट | स्थान | वार्षिक कैपेसिटी टन |
|---|---|---|---|---|
| 1. | अलानसंस | पूर्णतः एकीकृत | औरंगाबाद | 90,000 |
| | | भैंस, भेड, बकरी | उन्नाव | 90,000 |
| | | ऊपर लिखित | कोलकाता | 100,000 |
| | | अर्ध एकीकृत | हैदराबाद | 90,000 |
| | | | साहिबाबाद | 50,000 |
| 2. | हिंद एग्रो इंडस्ट्रीज | पूर्णतः एकीकृत | अलीगढ | 120,000 |
| | | भैंस, भेड, बकरी | साहिबाबाद | 50,000 |
| | | भैंस, भेड, बकरी | मेरठ | 25,000 |
| | | अर्ध एकीकृत वही | खुजरी | 20,000 |
| | | वही | दिल्ली | 20,000 |
| 3. | अल-कबीर | पूर्णतः एकीकृत | हैदराबाद | 60,000 |
| | | भैंस, भेड, बकरी | | |
| 4. | अरेबियन एक्सपोर्ट्स | पूर्णतः एकीकृत | कोरेगांव | 50,000 |
| | | भैंस, भेड, बकरी | महाराष्ट्र | |
| 5. | फेयर एक्सपोर्ट्स | पूर्णतः एकीकृत | बाराबंकी | 50,000 |
| | | भैंस, भेड, बकरी | | |
| 6. | एमकेआर | पूर्णतः एकीकृत | नांदेड | 40,000 |
| | | भैंस, भेड, बकरी | महाराष्ट्र | |
| 7. | पंजाब एग्रो | पूर्णतः एकीकृत | बस्सी | 50,000 |
| | | भैंस, भेड, बकरी | चण्डीगढ | |
| 8. | वेंके | पूर्णतः एकीकृत | पुणे | 1 Million |
| | | पोल्ट्री | | Birds |
| 9. | सरकारी | पूर्णतः एकीकृत | देवनार मुम्बई | 50,000 |
| | | भैंस, भेड, बकरी | | |
| 10. | सरकारी | पूर्णतः एकीकृत | गोआ | 10,000 |
| | | भैंस, भेड, बकरी | | |

## उ.प्र. में खादी पर 10% डिस्काउंट

उत्तरप्रदेश में गांधी जयंती से खादी उत्पादों पर 10% डिस्काउंट दिया जाएगा। यह निर्णय उत्तरप्रदेश केबिनेट ने गत दिनों हुई बैठक में लिया।

# प्रेरक कहानियाँ

## सब धन धूरि समान

विजयनगर के कृष्णदेव राय ने जब राजगुरु व्यासराय के मुख से संत पुरंदरदास के सादगी भरे जीवन और निर्लोभिता की प्रशंसा सुनी, तो उन्होंने संत की परीक्षा लेने की ठानी और एक दिन सेवकों से संत को बुलवाकर उनको भिक्षा में चावल डाले। संत प्रसन्न हो बोले, ''महाराज् प्रतिदिन मुझे इसी तरह कृतार्थ किया करें!'' घर लौटकर पुरंदरदास ने प्रतिदिन की भांति भिक्षा की झोली पत्नी सरस्वती देवी के हाथ में दे दी। किंतु जब वह चावल बीनने बैठी, तो देखा कि उसमें छोटे-छोटे हीरे हैं। उन्होंने तत्क्षण पति से पूछा, ''कहां से लाये हैं आज भिक्षा ?'' पति ने जब राजमहल से' जवाब दिया तो संत पत्नी ने घर के पास घूरे में वे हीरे फेंक दिए। अगले दिन जब पुरंदरदास भिक्षा लेने राजमहल गये, तो सम्राट को उनके मुख पर हीरों की आभा दिखी और उन्होंने फिर से झोली में चावल के साथ हीरे डाल दिए। ऐसा क्रम एक सप्ताह तक चलता रहा।

सप्ताह के अंत में राजा ने व्यासराय से कहा, ''महाराज! आप कहते थे कि पुरंदर जैसा बैरागी दूसरा नहीं, मगर मुझे तो वे लोभी जान पड़े। यदि विश्वास न हो तो, उनके घर चलिए और सच्चाई को अपनी आंखों से देख लीजिए।'' वे दोनों जब संत की कुटिया में पहुंचे तो देखा कि लिपे-पुते आंगन में तुलसी के पौधे के समीप सरस्वती देवी चावल बीन रही हैं। कृष्णदेवराय ने कहा, ''बहन! चावल बीन रही हो ?''

सरस्वती देवी ने कहा, ''हां भाई! क्या करूं, कोई गृहस्थ भिक्षा में ये कंकड़ डाल देता है, इसलिए बीनना पड़ता है। ये कहते हैं, भिक्षा देने वाले का मन न दुखे इसलिए प्रसन्न मन से भिक्षा ले लेता हूं पैसे इन कंकड़ों को चुनने में बड़ा समय लगता है।''

राजा ने कहा, ''बहन! तुम बड़ी भोली हो, ये कंकड़ नहीं, ये तो मूल्यवान हीरे दिखायी दे रहे हैं।'' इस पर सरस्वती देवी ने कहा, ''आपके लिए ये हीरे होंगे, हमारे लिए तो कंकड़ ही हैं। हमने जब तक धन के आधार पर जीवन व्यतीत किया, तब तक हमारी दृष्टि में ये हीरे थे। पर जब से भगवान विठोबा का आधार लिया है और धन का आधार छोड़ दिया है ये हीरे हमारे लिए कंकड़ ही हैं।'' और बीने हुए हीरों को वह घूरे पर डाल आयी, जहां पिछले छह दिन के फेंके गये हीरे चमचमा रहे थे। यह देख व्यासराय के मुख पर मंद मुस्कान फैल गयी और सलज्ज कृष्णदेवराय माता सरस्वती के चरणों में झुक गये।

## सांई इतना दीजिए

हजरत उमर द्वितीय खलीफा बहुत सादगी पसंद थे। फिलीस्तीन के अपने राजकोष से अपने परिवार के पोषण के लिए वे केवल बीस रुपया माहवार लेते थे। इससे उनकी हालत इतनी खराब रहती कि कोहनी के पास फटे कपड़ों पर चमड़े के पैबंद लगाने पड़ते, ताकि उस जगह कपड़े दोबारा न फटें। जूते वे स्वयं गाठ लेते और सिरहाने तकिये की जगह ईंट रखते। जब उनका यह हाल था, तब बच्चों की क्या बात ? वे भी फटेहाल रहते। उनके हमजोली बालक अपने नये-नये कपड़े दिखाकर उन्हें चिढ़ाया करते।

एक बार उनके एक पुत्र रहमान से न रहा गया और रो-रोकर उसने नये कपड़े सिलवाने के लिए अपने पिता से बहुत मिन्नतें कीं। इससे खलीफा का हृदय पसीजा और उन्होंने अपने कोषाध्यक्ष से अपने वेतन से पेशगी के रूप में दो रुपये देने के लिए कहा। किंतु कोशाध्यक्ष उनसे भी बढ़कर था। उसने देने से इनकार कर दिया, कहा, ''हुजूर मुआफी चाहता हूं खुदा-ना-खास्ता आप इंतकाल फरमा गये, तो यह पेशगी किस खाते में डालूंगा ? मौत का कोई भरोसा नहीं, उसे आते देर नहीं लगती। मैं नहीं चाहता कि आप इस दुनिया से कर्जदार होकर जाएं।'' बात हजरत को जंच गयी और उन्होंने कोशाध्यक्ष की दूरंदेशी की तारीफ की और बच्चे को गले लगाकर अगले माह कपड़े सिलवा देने का आश्वासन दिया।

## मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला

श्रीरामकृष्ण परमहंस के गले में नासूर हो गया था। उन्हें देखने श्रीशशधर तर्कचूड़ामणि उनके पास आये। उन्होंने कहा, ''आप अपने मन को रोगग्रस्त अंग पर केंद्रित कर के रोग चला जा, रोग चला जा - ऐसा क्यों नहीं कहते ? ऐसा कहने से निश्चय ही आपका रोग चला जाएगा।'' इस पर श्रीरामकृष्णदेव बोले, ''तुम विद्वान होकर मुझे ऐसी सलाह देते हो? जब मैंने अपना मन आनंदमयी जगन्माता को समर्पित कर दिया है, तो उसे वहां से हटाकर इस हाड-मांसरूपी तुच्छ पिंजड़े पर कैसे लगाउं? तब शशधर बोले, आप मां की ही प्रार्थना क्यों नहीं करते कि वह आपको रोगमुक्त कर दे ?'' परमहंस बोले, ''जब मैं मां के बारे में सोचता हूं तो मेरा यह भौतिक शरीर लुप्त हो जाता है और मैं देहहीन हो जाता हूं इसलिए इस देह के बारे में मुंह से किसी भी प्रकार की प्रार्थना नहीं कर सकता!''

रजि. MPHIN/2003/11246 Postal Reg. ICD. (MP) 1106/2012-14

गोविभा 20 अक्टूबर, 2012

## गांधी के गुजरात में चमक खोती खादी

हाथ कता और हाथ बुना कप .डा, जिसके आसपास महात्मा गांधी ने स्वावलंबन और स्वराज्य के संघर्ष का ताना-बाना बुना था वह अपने ही गृहराज्य गुजरात में चमक खोती जा रही है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के विचार से खादी में लाखों लोगों को रोजगार देने की क्षमता मौजूद है, लेकिन आज खादी बुनकरों की संख्या दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है। वे दू सरे रोजगार की ओर ब .ढ गए हैं। गुजरात राज्य के वर्ष 2011-12 के सामाजिक आर्थिक रिव्यू में बताया गया है कि गत वर्ष की तुलना में इस वर्ष खादी क्षेत्र में रोजगार की संख्या 27% घट गयी है। वर्ष 2009-10 में राज्य में 12,136 लोगों को रोजगार प्राप्त था, जो 2010-11 में घटकर 8883 रह गया है। यह जानकारी गुजरात राज्य खादी ग्रामोद्योग बोर्ड ने दी है। खादी बुनाई के लिए घर पर लगे हु ए करघों को आय का दू सरा साधन माना गया है। बाजार की प्राथमिकता और कच्चे माल की उपलब्धता में अनिश्चितता के कारण बुनकर दू सरा रोजगार अपना रहे हैं।

खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग के पूर्व अधिकारी हरीश शाह ने यह जानकारी दी। अब बुनकर अलग रोजगार की उन्मुख हो रहे हैं। वे प्रोविजनल स्टोर्स खोल रहे हैं। उनके ल .डके औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने जा रहे हैं। अनेक लोग औद्योगिक प्रशिक्षण हासिल कर रहे हैं। राज्य में खादी का उत्पादन भी घटा है। वर्ष 2009-10 में 26.47 करो .ड की खादी का उत्पादन हु आ था जबकि वर्ष 2010-11 में यह घटकर 25.06 करो .ड रह गया। इसी वर्ष में खादी की बिक्री 36.15 करो .ड रुपये से घटकर 34.54 करो .ड रुपये रह गयी। श्री शाह ने कहा कि भारत का युवा खादी को फेशन के रूप में देख रहा है। वह इसे रोजगार ब .ढानेवाले उद्योग के रूप में नहीं देखता है। आज आदर्श बदल गए हैं, उद्योगों की प्राथमिकताएं भी बदल गयी हैं।

## एफडीआई से खादी बिक्री ब .ढेगी

भारत सरकार की एफडीआई नीति से खादी उत्पादों देश और विदेश में बिक्री ब .ढेगी। यह बात खादी ग्रामोद्योग आयोग के अध्यक्ष श्री देवेंद्र देसाई ने कही। उन्होंने कहा कि, ''मेरा व्यक्तिगत मानना है कि एफडीआई नीति से खादी की बिक्री ब .ढेगी। एफडीआई नीति को लागू करने के लिए देश में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा कायम करना जरूरी है। इससे देश की अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलेगी। अंततः खादी बिक्री में वृद्धि होगी। वर्तमान में 70 करो .ड रुपये की खादी निर्यात की जा रही है। इसे 200 करो .ड तक ले जाने का लक्ष्य है। इसके लिए विदेशों में प्रदर्शनियां लगाई जाएंगी। हमें फ्रांस और ब्राजील में अच्छा प्रतिसाद मिला है। श्री देसाई ने बताया कि खादी आयोग ने देश की अग्रणी फैशन डिजाइनिंग संस्था एनआईडी और एनआइएफटी से अनुबंध किया है। खादी में लेटेस्ट डिजाइन के वस्त्र बनाए जाएंगे। उन्होंने गुजरात सरकार के खादी उत्पादों पर 10% डिस्काउंट की घोषणा का स्वागत किया। सौराष्ट्र रचनात्मक समिति ने इस वर्ष 6 करो .ड रुपये की बिक्री का लक्ष्य निर्धारित किया है।

## स्वास्थ्य समाचार

सर्वोदय सेवक और गोविभा के संपादक श्री नरेंद्र दु बे स्वास्थ्य लाभ के लिए बैं गलोर गए हैं। वहां काफी लाभ हु आ है। उनके मंझले पुत्र श्री पावस–कविता दु बे और नाती मानवेंद्र की देखरेख में यूनानी चिकित्सा के प्रभाव से चलने लगे हैं। मालिश और फीजियो थेरेपी के कारण हाथ में भी हलचल है। वाणी आना अभी शेष है। बैं गलोर से मिली जानकारी के अनुसार 4 नवंबर को पावस दु बे इन्दौर हवाई जहाज से लेकर इन्दौर आएंगे।

प्रकाशक :
नरेन्द्र दुबे, कार्याध्यक्ष, गोविज्ञान भारती
द्वारा मुंबई सर्वोदय मण्डल, 299, ताड़देव रोड, नानाचौक
मुंबई-400 007, फोन : (022) 23872061

डी-37, सुदामा नगर, इन्दौर-452 009
**फोन : 0731-2489475, मो. : 97542 20781**
www.govigyan.org ● e-mail : vinobaji1@gmail.com
prof.pushpendra@gmail.com

मुद्रण : श्रीकृति ग्राफिक्स, बी-133, सुदामानगर, इन्दौर
मो. : 98269 51703

वार्षिक शुल्क : रु. 50 एक प्रति : रु. 5

गोविभा
रजि. MPHIN/2003/11246
पोस्टल रजि.आई.सी.डी. (एम.पी.) 1106/12-14

सेवा में,